गायत्री शक्ति का नारी स्वरूप

गायत्री महाशक्ति का स्वरूप और रहस्य

मनुष्य का शरीर विश्लेषण करके देखा जाए, तो पता चलेगा कि पुरुष और नारी का भेदभाव स्थूल शरीर तक ही है। दोनों के मूल में काम करने वाली चेतना शक्ति में कोई तात्त्विक भेद नहीं। दोनों में समान विचार शक्ति काम करती है। दोनों को ही सुख-दु:ख, हानि-लाभ, जीवन-मरण की अनुभूति होती है। जैसी इच्छाएँ, आकांक्षाएँ पुरुष की हो सकती हैं, कम-ज्यादा वैसी ही इच्छाएँ और अनुभूतियाँ स्त्री में भी होती हैं। आत्मिक दृष्टि से दोनों में कोई भेद नहीं। अन्तर केवल भावना और शरीर के कुछ अवयवों भर का है।

गायत्री भी एक प्रकार की ईश्वरीय चेतना है। वह न नारी है, न नर। फिर भी शास्त्रों में उसे जननी और माता कहकर ही संबोधित किया गया है। यह पढ़कर कुछ कौतूहल अवश्य होता है, पर उसमें गलत कुछ भी नहीं है। गायत्री महाशक्ति के स्वरूप और रहस्य को समझने के बाद इस विभेद का अंतर स्पष्ट समझ में आ जाएगा। वैसे जो उस महाशक्ति की उपासना नारी स्वरूप में न करना चाहें, वे निराकार ब्रह्म, प्रकाश अथवा सविता देवता की उपासना मानकर भी उस महाशक्ति से लाभान्वित हो सकते हैं, उसमें न तो कोई हानि है, और न ही कुछ दोष। माता स्वरूप मानकर गायत्री उपासना कुछ सरल अवश्य हो जाती है, इसलिए शास्त्रकार ने उस आद्यशक्ति को माता का स्वरूप दिया है।

गायत्री महामंत्र भारतीय तत्त्वज्ञान एवं अध्यात्म विद्या का मूलभूत आधार है। चारों वेदों में उन्हीं २४ अक्षरों की व्याख्या हुई है। वट वृक्ष की समस्त विशालता उसके नन्हें से बीज में जिस प्रकार सन्निहित रहती है, उसी प्रकार वेदों में जिस अविच्छिन्न ज्ञान-

विज्ञान का विशद वर्णन है, बीजरूप में वही गायत्री मंत्र में पाया जा सकता है।

भारतीय धर्म में प्रचलित उपासना-पद्धतियों में सर्वोत्तम गायत्री ही है। उसे अनादि माना गया है। देवता, ऋषि, मनीषी उसका अवलंबन लेकर आत्मिक प्रगति के पथ पर आगे बड़े हैं और इसी आधार पर उन्होंने समृद्धियाँ, सिद्धियाँ एवं विभूतियाँ उपलब्ध की हैं। हमारा प्रचीन इतिहास बड़ा गौरवपूर्ण है। इस गौरव-गरिमा का श्रेय हमारे पूर्व पुरुषों द्वारा उपार्जित आत्मशक्ति को ही है। कहना न होगा कि इस दिव्य उपार्जन में गायत्री महामंत्र का ही सर्वोत्तम स्थान है।

स्थूल प्रकृति की शक्तियों का वैज्ञानिकों ने बहुत कुछ पता लगा लिया है, यद्यपि जो खोज शेष है, वह प्राप्त उपलब्धियों की तुलना में कहीं अधिक है, फिर भी निस्संदेह इस दिशा में बहुत प्रयत्न हुआ है। जो सफलता मिली है, वह सराहनीय है। प्राचीनकाल के तत्त्वदर्शी विज्ञानवेत्ता भौतिक विज्ञान की शक्ति और उसके उपार्जन की कष्ट साध्य प्रणाली से भली-भाँति परिचित थे, इसलिए वे उसे बाल-क्रीड़ा जैसी उपहासास्पद एवं उपेक्षणीय मानते थे। उनकी दृष्टि में सूक्ष्म जगत और उसमें सन्निहित अद्‌भुत, अनुपम एवं दिव्य शक्तियों की महत्ता थी, इसलिए उन्होंने अपना सारा ध्यान उसी ओर लगाया था, श्रम भी उसी दिशा में किया था। फलस्वरूप पाया भी इतना अधिक था कि धरती पर स्वर्ग अवतरित करना, मनुष्य में देवत्व का दर्शन करना सम्भव हो सका था।

आज के वैज्ञानिक जिस प्रकार भौतिक शक्तियों का पता लगाकर उनका उपयोग यंत्रों द्वारा कर रहे हैं और अपनी सफलता से मानव जाति को लाभान्वित कर रहे हैं, उसी प्रकार प्राचीन काल के तत्त्वदर्शी वैज्ञानिकों ने, ऋषियों ने चेतन जगत में समाविष्ट एक से एक बृहत्तर शक्तियों की जानकारी प्राप्त की थी और उसके उपयोग का लाभ मानव-जाति को दिया था। इस प्रकार की उनकी

अगणित उपलब्धियों में गायत्री शक्ति का महान उपयोग के लिए अवतरण हो सकना एक बहुत बड़ा वरदान है।

जड़ जगत में काम करने वाली विद्युत, गुरुत्वाकर्षण, अणु-विकिरण, ब्रह्माण्डव्यापी ईथर, उद्भव और विलय आदि अगणित शक्तियों का पता लगाया गया है। इसी प्रकार चेतन जगत में व्याप्त शक्ति-पुंजों में से जितना कुछ ढूँढ़ा जा सकता है, उसका महत्त्व, उपयोग एवं परिणाम उतना अधिक है कि उनमें से कोई थोड़ा सा भी उपयोग कर सके, तो अपने व्यक्तित्व को समुन्नत करते हुए महामानव, अतिमानव, नर-देव एवं नर-नारायण बन सकता है।

अणु समूह की गतिशीलता से उस भौतिक जगत का सारा क्रिया-कलाप चलता है। उसी प्रकार सूक्ष्म जगत के महदाकाश में चेतना की एक अविच्छिन्न धारा बहती है। उसी के फलस्वरूप जीवन के जितने भी स्वरूप विकसित एवं अविकसित जीवों में पाए जाते हैं, वे उस दिव्य चेतन की गतिशीलता ही प्रदर्शित करते हैं। इस अचिंत्य, अगोचर, अनुपम, विश्व-ब्रह्माण्ड में लहराती हुई चेतना का नाम 'ब्रह्म' है। ब्रह्म इस समस्त विश्व ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। कोई कण उसकी उपस्थिति से रहित नहीं। भौतिक जगत की गतिविधियों की प्रेरणा इस ब्रह्म से ही मिलती है। आइन्सटीन प्रभृति चोटी के गणमान्य वैज्ञानिकों ने निःसंकोच भाव से यह स्वीकार किया है कि प्रकृति को सक्रिय रखने वाली अणु-गतिशीलता वस्तुतः किसी अज्ञात चेतन शक्ति के नियत्रंण में काम करती है और उसी की शक्ति का अनुदान लेकर यह निर्जीव संसार सजीव जैसी चेष्टा कर रहा है। आज के वैज्ञानिक भले ही उस ब्रह्म चेतना का स्वरूप ठीक से समझने में समर्थ न हो पा रहे हों, पर वह दिन दूर नहीं, जब उसका अस्तित्व भावना क्षेत्र तक सीमित न रह कर स्थूल जगत में भी प्रत्यक्ष अनुभव किया जाने लगेगा। भारतीय तत्त्वदर्शियों ने इस ब्रह्म चेतना की सत्ता चिर अतीत में ही जान ली और उस शक्ति को मानव जीवन में उपयोग करने की प्रक्रिया का एक व्यवस्थित विधान बनाकर मानव प्राणी के नगण्य अस्तित्व को इतनी महत्तम

स्थिति में परिणत किया था, जिसमें स्वयं तक ब्रह्मभूत हो सकें। इस विज्ञान का नाम 'अध्यात्म' रखा गया।

अगण्य दृष्टिगोचर होने वाला अणु आत्मा जिस प्रकार अवलंबन करने से विभु बन सके, नर से नारायण के रूप में विकसित हो सके, आत्मा-परमात्मा बन सके, उस विद्या का नाम अध्यात्म अथवा ब्रह्मविद्या रखा गया। ब्रह्म अपने आप में द्रष्टा मात्र है। वह ऐसा है तो सही, पर अपनी महत्ता एवं गरिमा के अनुरूप उत्पादन एवं व्यवस्था की प्रक्रिया का भी निर्धारण करता है। उसकी सक्रियता-शक्ति यद्यपि उसी का अंग है, तो भी उसकी क्रिया प्रणाली की भिन्नता देखते हुए उसे ब्रह्म की पूरक-सामर्थ्य कहा जा सकता है।

पुराणों में गायत्री महाशक्ति का निरूपण ब्रह्मा जी की पत्नी के रूप में हुआ। ब्रह्म-पत्नी-अर्धांगिनी अर्थात क्षमता। पौराणिक उपाख्यान के अनुसार अलंकार यह है कि ब्रह्मा जी की दो पत्नियाँ थीं, एक गायत्री, दूसरी सावित्री। गायत्री अर्थात चेतन जगत में काम करने वाली शक्ति, सावित्री अर्थात भौतिक जगत को संचालित करने वाली शक्ति। भौतिक विज्ञान सावित्री उपासना का विधान प्रस्तुत करता है। विभिन्न प्रकार के वैज्ञानिक आविष्कार एवं उपकरण सावित्री शक्ति की अनुकम्पा के ही प्रतीक हैं। गायत्री वह शक्ति है जो प्राणियों के भीतर विभिन्न प्रकार की प्रतिभाओं, विशेषताओं और महत्ताओं के रूप में परिलक्षित होती है। जो इस शक्ति के उपयोग का विधान-विज्ञान ठीक तरह जानता है, वह उससे वैसा ही लाभ उठाता है, जैसा कि भौतिक जगत के वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशालाओं, मशीनों तथा कारखानों के माध्यम से उपार्जित करते हैं।

सामान्य स्थिति के नर पशु को व्यक्तित्व की दृष्टि से विकसित होकर मानव, महामानव, अतिमानव बनना है, तो उसे अनंत चैतन्य सागर में कल्लोल करने वाली इस ब्राह्मी शक्ति का ही आश्रय लेना पड़ेगा। आकाशवाणी अपने विभिन्न स्टेशनों से, विभिन्न स्तरों पर,

विभिन्न अभिभाषण प्रसारित करती है। हमारा रेडियो यंत्र यदि निष्क्रिय पड़ा हो तो उसमें कोई ध्वनि सुनाई न देगी, पर उसमें बिजली चालू कर दी जाए और सुई निर्धारित मीटर पर कर दी जाए, तो जिस भी स्टेशन का प्रसारण मंद या तीव्र ध्वनि में सुनना हो, सुना जा सकेगा। ठीक इसी प्रकार ब्राह्मी महाशक्ति-गायत्री सर्वव्यापक होते हुए भी असम्बद्ध लोगों का कोई विशेष हित साधन नहीं कर पाती, पर जो उसके साथ-साथ अन्तःचेतना को जोड़ देते हैं, वे उस धारा का अवतरण अपने में होता हुआ देखते हैं और उसका लाभ उठाते हैं। गायत्री उपासना की शास्त्रोक्त पद्धति एक ऐसी ही वैज्ञानिक प्रणाली है, जो जीव को ब्राह्मी सत्ता के साथ जोड़कर वैसा ही लाभ उठाने का अवसर प्रस्तुत करती है, जैसा कि खाली तालाब को भरे तालाब के साथ नाली द्वारा जोड़ दिया जाय, तो कुछ ही देर में जल से भर जाने का लाभ ले सकता है।

यों साधारण उपासना क्रम में गायत्री को एक देवी के रूप में चित्रित-अंकित किया गया है। त्रिकाल संध्या में ब्राह्मी, वैष्णवी, शांभवी आकार-प्रकार में उसका ध्यान, भजन किया जाता है। माता के रूप में उसकी भावना करते हैं और नारी आकृति की प्रतिमा में उसका पूजन, वंदन संपन्न करते हैं। पर यह तो ध्यान की एकाग्रता और भक्ति भावना के जागरण का एक तरीका मात्र है, उपासना के लिए मानवीय मनोभूमि की रचना के अनुभव शब्द एवं भावों का निर्धारण करना पड़ता है। विद्युत महाशक्ति के विश्वव्यापी सूक्ष्म रूप को वैज्ञानिक जानते हैं। साधारण लोग तो उसे बत्ती, पंखा आदि रूपों में कार्य करते देखते हैं। उनकी दृष्टि में इन उपकरणों से गायत्री की माता रूप में पूजा-अर्चा की जाती है और उसके साथ वैसा ही संबंध जोड़ा जाता है, जैसा कि सांसारिक माँ-बेटे का होता है। यह प्रक्रिया आवश्यक है, क्योंकि निराकार तत्त्व के साथ पंचभौतिक मन अपना संबंध जोड़ ही नहीं सकता। निराकार का ध्यान संभव नहीं और न उसके साथ किसी प्रकार की आत्मीयता की भावना उठ सकती है। इसलिए ब्राह्मी शक्ति के निराकार होते

हुए भी उपासना के लिए उसे साकार रूप में ही प्रतिष्ठापित करना पड़ता है। यदि ऐसा न किया जाए, तो ध्यान जैसी उपासना की प्रक्रिया का द्वार ही बंद हो जाएगा। इसलिए गायत्री माता के साकार स्वरुप की उपयोगिता आवश्यक मानते हुए भी हमें यह जानना होगा कि ब्राह्मी महाशक्ति वस्तुत: एक विश्व-व्यापी चेतन तत्त्व है, जो कि प्राणियों के प्राण के रूप में देखा जा सकता है। गायत्री उपासना द्वारा हम अपने सामान्य प्राण को महाप्राण में परिणत-विकसित करते हैं।

साधारणतया मानव शरीर में रहने वाला अकिंचन सा प्राण स्फुल्लिंग इतना ही प्रयोजन सिद्ध करता है कि प्राणी अपनी शारीरिक एवं मस्तिष्क की गतिविधियाँ जारी रख सके, जो जीवन धारण किए रहने के लिए आवश्यक है। प्राण के अंतराल में से शक्ति कंपन क्षण-क्षण पर उद्‌भूत होते रहते हैं। वे कोई अन्य उपयोग न होने के कारण यों ही शून्य में जाते और समाप्त होते रहते हैं, इसका कोई लाभ प्राणधारी को मिल नहीं पाता। पर यदि कोई ऐसा उपाय निकल आए जिससे इस प्राणतत्त्व के शक्ति-कंपनों को सुरक्षित रखा जा सके, तो यह कोष एक बृहद् भाण्डागार के रूप में सचिंत होकर प्राणी को सच्चे अर्थों में शक्तिवान बना सकता है।

गायत्री शब्द का नामकरण उसके क्रिया-कलाप एवं स्वभाव को ध्यान में रखकर ही किया गया है। इस महाशक्ति के साथ संबंध होने की प्रथम प्रतिक्रिया यह होती है कि साधक का प्राण-प्रवाह शून्य में बिखरना रुक जाता है और उसका ऐसा संरक्षण होता है, जिससे कोई महत्त्वपूर्ण प्रयोजन सिद्ध किया जा सके। वर्षा का जल नदी-नालों में बहता हुआ यों ही अस्त-व्यस्त हो जाता है, पर यदि उसे बाँध लगाकर रोका जा सके, तो सिंचाई, विद्युत उत्पादन आदि कई कार्य सिद्ध हो सकते हैं। गायत्री उपासना प्राण शक्ति के क्षरण को रोकती है, उसकी रक्षा करती है और इस संरक्षण से लाभान्वित उपासक दिन-दिन प्रगति पथ पर अग्रसर होता है, इस

तथ्य को ध्यान में रखते हुए उस महती शक्ति का नाम-गुण के अनुरुप तत्त्वदर्शी मनीषियों ने 'गायत्री' रखा।

परमात्मनस्तु या लोके ब्रह्मशक्तिर्विराजते।
सूक्ष्मा च सात्त्विकी चैव गायत्रीत्यभिधीयते॥

'सब लोकों में विद्यमान, जो सर्वव्यापक परमात्म शक्ति है, वह अत्यन्त सूक्ष्म, सत्-प्रकृति ही चेतन-शक्ति गायत्री कहलाती है।'

अपना परिचय देते हुए इस महाशक्ति ने शास्त्रों के विभिन्न कथा-प्रसंगों में इस रहस्य का रहस्योद्घाटन किया है कि मनुष्य के अंदर जो सचेतन विशेषता होगी, उसके मूल में ब्राह्मी-शक्ति का ही वैभव रहा होगा। धन-सम्पत्ति तो लोग उचित-अनुचित तरीकों से कमा लेते हैं, समृद्ध और श्रीमान भाग्यवश मूर्ख भी बन जाते हैं, पर यदि किसी का व्यक्तित्व विकसित हो रहा होगा, तो उसके अन्तराल में यही ब्राह्मी-चेतना-गायत्री काम कर रही होगी। जिस सामर्थ्य के बल पर लोग विभिन्न प्रकार की सफलताएँ उपलब्ध करते हैं, उस शक्ति को भौतिक नहीं, आत्मिक ही समझना चाहिए। आत्मबल के अभाव में समृद्धि उपार्जन तो दूर, व्यक्ति उसकी रखवाली भी नहीं कर सकता। इस रहस्य का उद्घाटन उसी शक्ति के श्री मुख से इस प्रकार हुआ है-

अहं बुद्धिरहं श्रीश्च धृतिः कीर्ति स्मृतिस्तथा।
श्रद्धा मेधा दया लज्जा क्षुधा तृष्णा तथा क्षमा॥
कांतिः शांतिः पिपासा च निद्रा तंद्रा जराऽजरा।
विद्याऽविद्या स्पृहा वांछा शक्तिश्चाशक्तिरेव च॥
वसा मज्जा च त्वक्चाहं दृष्टिर्वागनृता नृता।
परा मध्या च पश्यंती नाड्योऽहं विविधाश्च याः॥
किं नाहं पश्य संसारे मद्वियुक्तं किमस्ति हि।
सर्वमेवाहमित्येवं निश्चयं विद्धि पद्मज॥

—देवी भागवत ३/६/८-११

मैं क्या हूँ? इस संसार में मेरे सिवाय और कुछ नहीं है। बुद्धि, धृति, कीर्ति, श्रद्धा, लज्जा, क्षुधा, तृष्णा, क्षमा, कांति, पिपासा, निद्रा,

तंद्रा, जरा, अजरा, विद्या, अविद्या, स्पृहा, वांछा, शक्ति, वसा, मज्जा, त्वचा, दृष्टि, असत् और सत् वाणी, परा, मध्यमा, पश्यंती नाड़ी-संस्थान आदि सब कुछ मैं ही हूँ।

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम।
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि।

—ऋ० १०/१२५/४

यह विश्व मुझसे ही जीवित है। मेरे द्वारा ही उसे अन्न मिलता है। मेरी शक्ति से ही वह बोलता और सुनता है। जो मेरी उपेक्षा करता है, वह नष्ट हो जाता है। हे श्रद्धावान! सुनो यह रहस्य मैं तुम्हारे कल्याणार्थ ही कहती हूँ।

प्रकृति ने जड़ पदार्थ बनाए। पदार्थों की रचना उसने की, पर उन पदार्थों को व्यवस्थित करने और उपयोगिता में लाने की क्षमता चेतना में ही रहती है। चेतन की अनुपस्थिति अथवा न्यूनता में सुख-साधनों के प्रचुर परिमाण में उपस्थित रहने पर भी उनका कोई उपयोग नहीं। सोना जमीन में गड़ा है, पर किसी सजीव प्राणी को उसकी जानकारी न हो अथवा निकालने की क्रिया करने वाला कोई न हो, तो वह सोना जहाँ का तहाँ पड़ा रहेगा, उससे किसी को कुछ भी लाभ न होगा। उसी प्रकार मानव शरीर जैसा बहुमूल्य यंत्र, जो मस्तिष्क से बहुत कुछ सोचता, हाथ पैरों से बहुत कुछ करता एवं इन्द्रियों से बहुत कुछ रसास्वादन करता है, चेतन तत्त्व निकल जाने पर व्यर्थ सिद्ध हो जाता है। शरीर की विशिष्टता में प्रमुख स्थान चेतन तत्त्व का ही है। समस्त सुख-साधनों का वास्तविक आधार और मूल स्रोत वही है।

गायत्री का स्त्री स्वरूप क्यों ?

कई व्यक्ति पूछते हैं- गायत्री महाशक्ति को नारी रूप में ही क्यों पूजा जाता है, जब कि अन्य सभी देवता नर रूप में हैं। इसी प्रकार यह भी कहा जाता है कि गायत्री मंत्र में सविता देवता की प्रार्थना के लिए पुल्लिंग शब्दों का प्रयोग हुआ है, फिर उसे नारी रूप क्यों दिया ?

इन शंकाओं के मूल आधार में मनुष्य की वह मान्यता काम करती है, जिसके अनुसार नर को श्रेष्ठ और नारी को निकृष्ट माना गया है। घरों में नारियाँ नर की सेवा-पूजा करती हैं, उसके अधिकार और आधिपत्य में रहती हैं, उन्हें छोटा एवं हेय माना जाता है। स्त्री का वर्चस्व स्वीकार करने में पुरुष अपना अपमान मानते हैं। किसी स्त्री अफसर के नीचे पुरुष कर्मचारियों को काम करना पड़े, तो बाहर से कुछ न कहते हुए भी भीतर से कुड़कुड़ाते हैं। किसी घर में स्त्री की बात चलती हो, पुरुष अनुगामी हो, तो उसका मखौल उड़ाया जाता है। नर की नारी के प्रति जो यह सामंतकालीन तिरस्कार बुद्धि है, उसी से प्रभावित होकर उसे यह सोचना पड़ता है कि वह नारी की पूजा क्यों करे? जब नर देवता मौजूद है, तो नारी के आगे मस्तक झुका कर अपने नर तत्त्व को हेय क्यों बनाया जाए।

भगवान को नारी रूप में पूजने से किसी की कोई हानि नहीं वरन लाभ ही है। माता के हृदय में अपार वात्सल्य है। जितनी करुणा एवं ममता माता में होती है, उतनी और किसी संबंध में नहीं। उपासना के लिए भगवान को किसी घनिष्ठ संबंधी के रूप में ही मान्यता प्रदान करनी पड़ती है। निराकार ब्रह्म का ध्यान संभव नहीं। ध्यान के बिना उपासना नहीं हो सकती। निराकारवादी भी ध्यान-उपासना प्रयोजन के लिए प्रकाश का ध्यान करते हैं। प्रकाश भी आखिर पंचभूतों के अंतर्गत आता है। ध्यान भूमिका के रुप में प्रयुक्त किए जाने वाले प्रकाश बिंदु एवं सूर्य मंडल का एक आकार बन ही जाता है। इसलिए उपासना में कोई न कोई आकार तो निश्चित करना पड़ता है। इस आकार के साथ जितनी आत्मीयता, ममता, घनिष्ठता होगी, उतना ही मन लगेगा और चित्त एकाग्र होगा और भावनात्मक तन्मयता की ओर दृष्टि के साथ भगवत् प्राप्ति की ओर प्रगति होती चली जाएगी।

जिनके साथ घनिष्ठता स्थापित की जाती है, उनके साथ कोई न कोई रिश्ता बन जाता है। रिश्ते का अर्थ-असाधारण घनिष्ठता। परिवार के सदस्य—कुटुम्बी और कन्याओं के आदान-प्रदान से

संबंधित रिश्तेदार कहलाते हैं। उनके अतिरिक्त लोगों को मित्र कहते हैं, गुरुजन भी कहते हैं। इन्हीं वर्गों में स्वाभाविक प्रेम बढ़ता है, इनके सानिध्य में सुख और वियोग में दु:ख मिलता है। भगवान को प्राप्त करने के लिए उसमें प्रेम संबंध दृढ़ करना होता है और इसके लिए प्रेम-पात्र, कुटंबी, रिश्तेदार अथवा मित्र जैसा संबंध स्थापित करना पड़ता है। इस संबंध मान्यता में जितनी अधिक आत्मीयता होगी, उतनी ही प्रतिक्रिया मिलेगी। गुंबज अथवा कुएँ की प्रतिध्वनि की तरह हमारा प्रेम ही ईश्वरीय प्रेम एवं अनुग्रह बनकर हमारे पास लौटता है। जिस स्तर का भाव या प्यार हम भगवान के प्रति व्यक्त करते हैं, उसी के अनुरूप दीवार पर मारी हुई रबड़ की गेंद की तरह लौटकर भगवान की अनुकम्पा हमारे पास वापस आ जाती है। इसलिए भगवान को कोई न कोई संबंधी मानकर चलना होता है। उस मान्यता के आधार पर ही हमारी, उपासना में प्रगति होती है।

भगवान से कोई भी संबंध स्थापित किया जा सकता है। उस एक को ही किसी भी आत्मीय भाव से देखा जा सकता है, इसके लिए हर मान्यता उपयुक्त है। कहा भी है-

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बंधुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देव देव॥

-पाण्डव गीता

प्रार्थना में जिन संबंधों को गिनाया गया है। उनमें माता का संबंध सर्वप्रथम है, वह सर्वोपरि भी है, क्योंकि माता से बढ़कर परम नि:स्वार्थ, अतिशय कोमल, करुणा एवं वात्सल्य से पूर्ण और कोई रिश्ता हो ही नहीं सकता । जब हम भगवान को माता मानकर चलते हैं, तो उनकी प्रतिक्रिया सहृदय माता के वात्सल्य के रूप में ही उपलब्ध होती है। इन उपलब्धियों को पाकर साधक धन्य हो जाता है।

पिता से माता का दर्जा सौ गुना अधिक बताया है। यों पिता भी बच्चों को प्यार करते हैं, पर उस प्यार का स्तर माता की तुलना नहीं

कर सकता। इसलिए सब में भगवान को माता मानकर चलना अपने ही हित में है। इसमें अपने को ही अधिक लाभ होता है।

नारी के प्रति मनुष्य में एक वासनात्मक दुष्टता की प्रवृत्ति जड़ जमाए बैठी रहती है। यदि इसे हटाया जा सके, नर और नारी के बीच काम-कौतुक की कल्पना हटाई जा सके, तो विष को अमृत में बदलने जैसी भावात्मक रसायन बन सकती है। नर और नारी के बीच जो 'रयि' और 'प्राण' की विद्युत धारा सी बहती है, उनका सम्पर्क वैसा ही प्रभाव उत्पन्न करता है, जैसा कि बिजली की 'निगेटिव' और 'पाजेटिव' धाराओं का मिलन विद्युत संचार का माध्यम बन जाता है। माता और पुत्र का मिलन एक अत्यंत उत्कृष्ट स्तर की आध्यात्मिक विद्युतधारा का निर्माण करता है। मातृ स्नेह से विहीन बालकों में एक बड़ा मानसिक अभाव रह जाता है, भले ही उन्हें सांसारिक अन्य सुविधाएँ कितनी ही अधिक क्यों न मिलीं हों? पत्नी, बहिन, पुत्री आदि के रूप में भी नारी नर को महत्त्वपूर्ण भावनात्मक पोषण प्रदान करती है और उसकी मानसिक अपूर्णता को पूर्ण करने में सहायक होती है। माता का नारी रूप ध्यान में जब प्रवेश करता है, तो उससे प्राण की एक बड़ी अपूर्णता पूरी होती है।

युवती नारी के रूप में माता का ध्यान करके हम नारी के प्रति वासना दृष्टि हटाकर पवित्रता का दृष्टिकोण जमाने का अभ्यास करते हैं। इसमें जितनी सफलता मिलती है, उतना ही बाह्य जगत में भी हमारा नारी के प्रति वासनात्मक दृष्टि रखने से मन हटता है। इस प्रकार नर-नारी के बीच जिस पवित्रता की स्थापना हो जाने पर अनेक आत्मिक बाधाएँ, कुण्ठाएँ एवं विकृतियाँ दूर हो सकती हैं, उनका लाभ सहज ही मिलने लगता है। गायत्री माता का ध्यान एक वृद्धा नारी का नहीं, वरन एक युवती का होता है। युवती में यदि उत्कृष्टता की तथा पवित्रता की दृष्टि रखी जा सके, तो समझना चाहिए कि आत्मिक स्तर सिद्ध-योगियों जैसा तेजस्वी बन गया। गायत्री उपासना में इस महाशक्ति को नारी रूप देकर एक महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक आवश्यकता की पूर्ति का प्रयत्न किया गया है।

भाषा विज्ञान की दृष्टि से शक्ति स्त्री लिंग है। इसलिए यदि ध्यान कल्पना में उसे नारी रूप में निरुपित किया जाए, तो उसमें अनुचित कुछ भी नहीं है। उस महामंत्र में सविता देवता के लिए पुल्लिग शब्दों का प्रयोग भले ही हुआ हो, वह है स्तुति ही, प्रार्थना ही। प्रार्थना और स्तुति दोनों ही स्त्री लिंग हैं। इसी दिशा में यदि गायत्री को स्त्री रूप में निरुपित किया जाता है तो इसमें बुराई क्या हैं। सच तो यह है कि शक्ति तत्त्व को स्त्री पुरुष के वर्गों में विभक्त ही नहीं किया जा सकता। यह विभाजन तो शरीरधारी प्राणियों में संतानोत्पति प्रयोजनों के लिए ही होता है। दिव्य शक्तियाँ न तो शरीरधारी हैं और न उन्हें प्रजनन ही करना है। ऐसी दशा में उसमें वास्तविक लिंगभेद नहीं। उन्हें नर-नारी के रूप में तो ध्यान सुविधा के लिए ही चित्रित किया जाता है अथवा भाषा में जिस प्रकार का लिंग प्रयुक्त होता है, उसी आधार पर उनका शरीर बना दिया जाता है। यह वस्तु वास्तविक नहीं, वरन मानवी कल्पना का खेल है। अग्नि स्त्रीलिंग है, तेजस् पुल्लिग। शब्दों में लिंग भेद हैं, पर वस्तु परक ही है। वायु स्त्रीलिंग और मरुत् पुल्लिग है, बात एक ही है, पर शब्दों के आधार पर लिंग बदल गया है। उपवन पुल्लिग है, वाटिका स्त्रीलिंग, एक ही चीज के दो स्वरूप। शय्या और पलंग एक ही होते हुए भी लिंग पृथक् हैं। चंद्रमा को हिंदी में नर और अंग्रजी में नारी मानते हैं। वस्तुतः चंद्रमा एक ग्रह पिंड-मात्र है, वह न नर है, न नारी। भाषा कल्पना में उसे नर-नारी के रूप में खींचा जाता है। परब्रह्म की सर्वोपरि शक्ति को स्त्री कहा जाए या पुरुष, यह हमारी भाषा और कल्पना पर निर्भर है। वस्तुतः वह लिंगभेद से परे है। उपासना में गायत्री की तुलना नारी रूप में करके हम अपना ही साधनात्मक एवं भावनात्मक प्रयोजन पूर्ण करते हैं। अतएव इसमें संदेह तथा विवाद की कोई गुंजाइश नहीं है।

नर की जननी होने के कारण वस्तुतः नारी उससे कहीं अधिक श्रेष्ठ एवं पवित्र है। उसका स्थान स्वभावतः बहुत ऊँचा है। माता का

पूज्य स्थान पिता एवं उससे भी ऊँचा है। पुरुष की अपूर्णताएँ नारी के स्नेह सिंचन से ही दूर होती हैं। इसलिए यदि नारी के रूप में हमारा उपास्य इष्ट हो, तो वह औचित्यपूर्ण ही है। अनादिकाल से भारतीय धर्म में ऐसी ही मान्यता चली आ रही है, जिसके अनुसार माता को ही नहीं, पत्नी को भी पति से अधिक एवं प्रथम स्थान मिला है। पति-पत्नी के सम्मिलित नामों में पत्नी को प्राथमिकता है। लक्ष्मी-नारायण, सीताराम, राधेश्याम, उमा-महेश, शची-पुरंदर, माता-पिता, गंगा-सागर आदि नामों में पत्नी को ही प्राथमिकता मिली है। इसका कारण उसकी वरिष्ठता ही है। इस दृष्टि से भी यदि प्रश्न उठे कि देवता का पुल्लिंग स्वरूप अधिक उत्तम है या स्त्रीलिंग स्वरूप, तो उसका सहज उत्तर नारी के रूप में ही आएगा। ऐसी दशा में यह शंका या संदेह करना उचित नहीं कि गायत्री शक्ति को नारी का रूप देकर उसे जिस पूज्य स्थान पर बिठाया गया है, उसमें कुछ अनुचित हुआ है। नर की श्रेष्ठता का अहंकार ही इस प्रकार के प्रश्नों का सृजन करता है।

उपर्युक्त तथ्यों की पुष्टि में अगणित शास्त्रीय प्रमाण मिलते हैं। उनमें से कुछ का उल्लेख नीचे किया जाता है।

अचिन्त्यस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः।
उपासकानां सिद्ध्यर्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना॥

"परब्रह्म की सभी शक्तियाँ अचिंत्य और निर्गुण हैं। उन स्वरूपों को उपासकों को समझाने के उद्देश्य से ऋषियों ने उनके रुपों की कल्पना करके मूर्तियों को बनाया है।"

भेद उत्पत्तिकाले वै सर्गार्थं प्रभवत्यज।
दृश्यादृश्य विभेदोऽयं द्वैविध्ये सति सर्वथा॥६॥
नाहं स्त्री न पुमांश्चाहं न क्लीवं सर्ग संक्षये।
सर्गे सति विभेदः स्यात्कल्पितोऽयं धिया पुनः॥७॥
अहं बुद्धिरहं श्रीश्च धृतिः कीर्तिः स्मृतिस्तथा।
श्रद्धामेधादयालज्जाक्षुधातृष्णा तथा क्षमा॥८॥

—देवी भागवत ३/६/६-८

"उत्पत्ति के समय सृष्टि के अर्थ से ही भेद प्रतीत होता है। यह दृश्य, अदृश्य का विभेद—द्वैतभाव सदैव रहता है, अर्थात सृष्टि-दशा में ब्रह्म और ब्रह्म शक्ति दोनों स्वतंत्र रूप में प्रकट होते हैं, प्रलय हो जाने पर न मैं स्त्री हूँ, न पुरुष, न क्लीव हूँ। केवल सृष्टिकाल में ही बुद्धि द्वारा कल्पित भेद दृष्टि में आता है। सृष्टि की विकास अवस्था में ही बुद्धि, श्री, धृति, कीर्ति, श्रद्धा, मेधा, दया, लज्जा, क्षुधा, पिपासा और क्षमा मैं ही हूँ।"

अरूपं भावनागम्यं परं ब्रह्म कुलेश्वरि।
अरूपां रुपिणीं कृत्वा कर्मकाण्डरता नराः॥

—कुलार्णव तन्त्र

"वह ईश्वरी शक्ति अरूप और केवल भावनागम्य है। पर कर्मकाण्ड में संलग्न मनुष्य उस अरूप में से ही रूप की कल्पना कर लेते हैं।"

एवं विधो यो भगवान चिदात्मा सा एव गायत्री ..... गायत्रीपरमेश्वरावेव तथैव चेतनपुरुषस्य द्वे नाम्नी ध्याने तु स्त्रीलिंगः। *—विष्णु धर्मोत्तर*

"इस प्रकार जो भगवान है, वही गायत्री है। गायत्री और परमेश्वर ये उस चेतन पुरुष के ही नाम हैं ; परन्तु ध्यान के लिए वह (गायत्री रूप में) स्त्रीलिंग है।"

जगन्माता च प्रकृतिः पुरुषश्च जगत्पिता।
गरीयसीति जगतां माता शतगुणैः पितुः॥

"जगज्जननी प्रकृति है और जगत का पिता पुरुष है। जगत में पिता से सौ गुना महत्त्व माता का है।"

न बाला न च त्वं वयस्का न वृद्धा,
न च स्त्री न षण्ढः पुमानैव च त्वम्।
सुरो नासुरो नरो वा न नारी,
त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा॥

—महाकाली स्तवन

"हे महामाया न तुम बालिका हो, न वयस्क हो, न वृद्ध हो,

स्त्री-क्लीव और पुरुष भी तुम नहीं हो, न दानव हो, न नर हो, न नारी हो, तुम केवल परब्रह्मरूपिणी हो।''

अचिन्त्यापि साकार शक्ति स्वरूपा,
प्रतिव्यक्त्यधिष्ठानसत्त्वैकमूर्तिः।
गुणातीतनिर्द्वन्द्वबोधैकगम्या,
त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा॥

—महाकाली स्तवन

''तुम अचिंतनीय होते हुए भी साकार मूर्तिरूपा हो। प्रत्येक प्राणी में सत्वगुण रूप में विराजमान रहती हो तथा गुणातीत हो। केवल तत्त्वज्ञान से ही तुम जानी जाती हो। तुम्हीं परब्रह्म रूप से प्रसिद्ध हो।''

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी।
त्वं जीर्णो दंडेन वंचसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः॥

—श्वेता० ४-३

'तू स्त्री है, तू पुरुष भा ह, तू ही कुमार और कुमारी है, तू वृद्ध होकर लाठी के सहारे चलता है और तू ही उत्पन्न होकर सब ओर मुख वाला हो जाता है।'

सा च ब्रह्मस्वरूपा च नित्या सा च सनातनी।
यथाऽत्मा च तथा शक्तिर्यथाऽग्नौ दाहिका स्थिता॥
अत एव हि योगीन्द्रैः स्त्रीपुंभेदो न मन्यते।
सर्वं ब्रह्ममयं ब्रह्मञ्छश्वत् सदपि नारद॥

—देवी० भाग ९/१/१०-११

वही ब्रह्म प्रकृति, ब्रह्म स्वरूपा, नित्या और सनातनी है। परमब्रह्म परमात्मा के अनुरूप सभी गुण उस प्रकृति में निहित हैं, जैसे अग्नि में दाहिका शक्ति सदा रहती है। इसी से परम योगीजन स्त्री-पुरुष में भेद नहीं मानते। हे नारद! वे कहते हैं कि सत्-असत् जो कुछ भी है, सब ब्रह्ममय है।

कामधेनु तंत्र में कहा गया है कि-

''युवती सा समाख्याता सा महाकुण्डली परा''

अर्थात वह परा महाकुण्डली (महागायत्री) युवती के रूप में कही गई है।

स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम बहुशोभमानामुमाꣳहैमवतीम्

—केनो० ३-१२

इंद्रादि देवताओं को ब्रह्मज्ञान प्रदान करने को ब्रह्मस्थान में जो प्रतिमा प्रकट हुई है, उसी स्त्री-मूर्ति का दर्शन इंद्र को हुआ है।

जगद्धात्री महामायां ब्रह्मरूपां सनातनीम्।
दृष्ट्वा प्रमुदिताः सर्वे देवतागंधर्वाप्साराकिन्नराः॥

—बृहद् विष्णु पुराण

"जगन्माता, महामाया, ब्रह्मरूपा, सनातनी महाशक्ति को देखकर देवगण, गन्धर्व, अप्सरा, किन्नर, सब परम हर्षित हुए।"

जयाखिले सुराराध्ये जय कामेशि कामदे।
जय ब्रह्ममयि देवि ब्रह्मानन्दरसात्मिके॥

—ललितोपाख्यान ८/१

"हे महादेवि, तुम ही समस्त देवताओं की आराध्या हो, तुम्हीं सर्व कामनाओं की ईश्वरी और उनको पूर्ण करने वाली हो।"

त्वमेव सर्वजननी मूलप्रकृतिरीश्वरी।
त्वमेवाद्या सृष्टिविधौ स्वेच्छया त्रिगुणात्मिका॥
कार्य्यार्थे सगुणा त्वं च वस्तुतो निर्गुणा स्वयम्।
परब्रह्मस्वरूपा त्वं सत्या नित्या सनातनी॥
तेजस्स्वरूपा परमा भक्तानुग्रह विग्रहा।
सर्वस्वरूपा सर्वेशा सर्वाधारा परात्परा॥
सर्वबीजस्वरूपा च सर्वपूज्या निराश्रया।
सर्वज्ञा सर्वतोभद्रा सर्वमङ्गलमङ्गला॥

—ब्रह्मवैवर्त पु० प्रकृति २/६६/७

"तुम्हीं विश्वजननी, मूल प्रकृति ईश्वरी हो, तुम्हीं सृष्टि उत्पति के समय आद्या शक्ति के रूप में विराजमान रहती हो और स्वेच्छा से त्रिगुणात्मिका बन जाती हो, यद्यपि वस्तुतः तुम निर्गुण हो, तथापि प्रयोजनवश सगुण हो जाती हो। तुम पर ब्रह्मस्वरूप, सत्य, नित्य,

सनातनी हो, परम तेज स्वरूप और भक्तों पर अनुग्रह करने के हेतु मानव शरीर धारण करती हो, तुम सर्वस्वरूपा, सर्वेश्वरी, सर्वाधार एवं परात्पर हो। तुम सर्व बीजस्वरूप, सर्व पूज्या एवं आश्रयरहित हो, तुम सर्वज्ञ, सब प्रकार से मंगल करने वाली और सर्व मंगलों की मंगल हो।''

कथं जगत् किमर्थं त्वं करोषि केन हेतुना।
नाहं जानामि तद्देवि! यतोऽहं हि त्वदुद्भवः॥

—शक्ति दर्शन

''हे देवि! तुम किसके लिए? किस हेतु? जगत् की सृष्टि करती हो-मैं इस बात को नहीं जानता, क्योंकि मैं तुम से उत्पन्न हूँ।''

मायाख्यायाः कामधेनोर्वत्सौ जीवेश्वरावुभौ।

''जीव और ईश्वर दोनों मायारूपी कामधेनु के दो बछड़े हैं।''

उपर्युक्त प्रमाणों में परब्रह्म को नारी रूप में चित्रण करने का रहस्य प्रकट किया गया है। नर और नारी में किसे प्राथमिकता मिले? इस प्रश्न के उत्तर में नृतत्व ज्ञान का , जीव विज्ञान का भी सहारा लिया जा सकता है। शोधकर्ता इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि प्राथमिकता नारी की ही है। पहले भूमि बनी, बीजों का आविर्भाव उसके उपरांत हुआ।

नृतत्त्ववेत्ता 'बालक ऐलिस' इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि मानव-जाति का आरंभ नारी से ही होता है। पुरुष का अस्तित्व पीछे प्रकाश में आया। उन्होंने लिखा है-

प्राथमिकता और प्रकृति के नियमानुसार पहले नारी की ही उत्पत्ति हुई। साधारणतया प्राणी मात्र की उत्पत्ति नारी जाति पर ही अवलंबित है। प्राणी जगत की सृष्टि के लिए पुरुष की आवश्यकता ही न थी अथवा गौण थी। रज और वीर्य के संयोग से विभिन्न गुणों द्वारा जीवन-शक्ति को परिपुष्ट एवं प्रस्फुटित करने के हेतु लाभ की दृष्टि से पुरुष जाति का पीछे से विकास हुआ।

नारी में देवत्व की मात्रा पुरुष की तुलना में कहीं अधिक है। इसलिए जहाँ पुरुष को अपने गुण, कर्म, स्वभाव की उत्कृष्टता होने

पर ही पूज्य पद एवं सम्मान मिलता है, वहाँ नारी को उसकी जननी, भगिनी, कन्या आदि विशेषताओं के कारण जन्म-जात सम्मान मिल जाता है। उनके हृदय में वह विशालता विद्यमान है, जिसके आधार पर शिशु को अपने शरीर का रस निचोड़कर प्रदान कर सकती है। इन्हीं विशेषताओं के कारण मानवी होते हुए भी उसे देवी कहा जाता है। अधिकांश स्त्रियों के नाम के अंत में देवी पद लगता है— शकुंतला देवी, उर्मिला देवी, भगवती देवी आदि। शास्त्र कहते हैं—

स्त्रीषु प्रीतिर्विशेषेण स्त्रीष्वपत्यं प्रतिष्ठितम्।
धर्मार्थौ स्त्रीषु लक्ष्मीश्चस्त्रीषु लोकाः प्रतिष्ठिताः॥

चरक संहिता-चि० स्था० आ० २

"प्रीति का निवास अधिकतर स्त्रियों में ही होता है। संतान की जननी भी वही होती है। धर्म स्त्रियों में रहता है। लक्ष्मी भी स्त्रियों में रहती है, इसलिए संसार स्त्रियों में ही स्थित है।"

नारी रूप में परमात्मा का दिव्य दर्शन हम पग-पग पर कर सकते हैं। इस प्रकार की दव्यि दृष्टि जिसे प्राप्त है, उसे सच्ची आध्यात्मिक सिद्धि प्राप्त हुई समझनी चाहिए। गायत्री उपासना में नारी प्रतिमा को वंदनीया मानकर मनुष्य को पवित्रतम बनाने का प्रयत्न किया गया है। नारी वस्तुतः मूर्तिमान् महामाया ही है, देखिए—

जननी जन्मकाले च स्नेहकाले च कन्यका।
भार्या भोगाय सम्पृक्ता अन्तकाले च कालिका।
एकैव कालिका देवी विहरति जगत्त्रये॥

"वही महामाया हमको जननी रूप में जन्म देती है, कन्या के रूप में हमारी स्नेह की पात्र बनती है, भार्या के रूप में भोगदात्री बन जाती है और अंत समय में कालिका के रूप में हमारी इहलीला संवरण कर देती है। इस प्रकार एक ही महादेवी तीनों लोकों में विचरण करती रहती है।"

तंत्र ग्रंथों में नारी को भगवान की मूर्तिमान प्रतिमा मानकर उसकी विधिवत पूजा करने का विधान है। विभिन्न आयु तथा स्थिति की नारियों को विभिन्न देवियों के रूप में पूजनीय

मानकर उसका वंदन-अर्चन किया जाता है। ब्राह्मण भोजन की तरह ही कन्या भोजन का भी पुण्य माना गया है। नवरात्रियों में पुरश्चरण के अंत में तो विशेष रूप से कन्या भोजन की ही परंपरा है। ब्राह्मण तो विद्या, तपश्चर्या एवं सेवा के आधार पर ब्राह्मणत्व प्राप्त करते हैं, पर कन्याओं में वह तत्त्व जन्मजात रूप से ही स्वभावत: अनायास ही विद्यमान रहता है। इस संदर्भ में तंत्र-ग्रंथ का अभिमत देखिए-

''एक वर्ष आयु वाली बालिका 'कुमारी' कहलाती है, दो वर्ष वाली 'सरस्वती', तीन वर्ष वाली 'त्रिधामूर्ति', चार वर्ष वाली 'कालिका', पाँच वर्ष की होने पर 'सुभगा', छ: वर्ष की 'उमा', सात वर्ष की 'मालिनी', आठ वर्ष की 'कुब्जा', नौ वर्ष की 'कालसंदर्भा', दसवें में 'अपराजिता', ग्यारहवें में 'रुद्राणी',बारहवें में 'भैरवी', तेरहवें में 'महालक्ष्मी', चौदह पूर्ण होने पर 'पीठ-नायिका', पंद्रहवें में 'क्षेत्रज्ञा' और सोहलवें में 'अम्बिका' मानी जाती है। इस प्रकार जब तक ऋतु का उद्‌गम न हो, तभी तक क्रमश: संग्रह करके प्रतिपदा आदि से लेकर पूर्णिमा तक वृद्धि-भेद से कुमारी पूजन करना चाहिए।''

-रुद्रयामल-उत्तरखण्ड

''आठ वर्ष की बालिका गौरी, नौ वर्ष की रोहिणी और दस वर्ष की कन्या कहलाती है, इसके बाद वही महामाया और रजस्वला भी कही गई है। बारहवें वर्ष से लेकर बीसवें तक वह सुकुमारी कही गई है।''

''यमराज को चाहिए कि दश कन्याओं का पूजन करें। उनमें भी दो वर्ष से लेकर दस वर्ष की अवस्था तक की कुमारियों का पूजन करना चाहिए। दो वर्ष की आयु वाली हो वह 'कुमारी', तीन वर्ष की 'त्रिमूर्ति', चार वर्ष की 'कल्याणी', पाँच वर्ष की 'रोहिणी', छ: वर्ष की 'कालिका' सात वर्ष की 'चंडिका', आठ वर्ष की 'शांभवी', नौ वर्ष की 'दुर्गा' और दस वर्ष की 'सुभद्रा' कही गयी है। इनका मंत्रों द्वारा पूजन करना चाहिए। एक वर्ष वाली कन्या को

पूजा से प्रसन्नता नहीं होगी, अत: उसका पूजन ग्रहण नहीं है और ग्यारह वर्ष वाली से ऊपर वाली कन्याओं का पूजा में ग्रहण वर्जित है।''

''जो कुमारी को अन्न, जल अर्पण करता है उसका वह अन्न मेरु के समान और जल समुद्र के सदृश और अनंत होता है। ''योगिनी'' तंत्र के कथनानुसार-''कुमारी पूजा का फल अवर्णनीय है, इसलिए सभी जाति की बालिकाओं का पूजन करना चाहिए। कुमारी पूजन में जाति भेद का विचार करना उचित नहीं।'' 'काली तंत्र' में कहा गया है कि-''सभी बड़े-बड़े पर्वों पर अधिकतर मुहूर्तों में और महानवमी की तिथि को कुमारी पूजन करना चाहिए। सम्पूर्ण कर्मों का फल प्राप्त करने के लिए कुमारी पूजन अवश्य करें।'' 'बृहन्नीलतंत्र' के अनुसार-''पूजित हुई कुमारियाँ विघ्न, भय और अत्यंत उत्कृष्ट शत्रु को भी नष्ट कर डालती हैं।'' रुद्रयामल में लिखा है कि कुमारी साक्षात् योगिनी और श्रेष्ठ देवता है। कुमारी को विधियुक्त भोजन अवश्य कराना चाहिए। कुमारी को पाद्य, अर्घ्य, कुमकुम और शुभ चंदन आदि अर्पण करके भक्तिभाव से उसकी पूजा करे।''

-कुब्जिका तंत्र

कुमारी कन्याओं तक ही यह दिव्य भाव सीमित नहीं माना गया है, वरन उसका क्षेत्र अत्यंत विशाल है। प्रत्येक नारी में देवत्व की मान्यता रखना और उसके प्रति पवित्रतम श्रद्धा रखना एवं वैसा ही व्यवहार करना उचित है, जैसा कि देवी-देवताओं के साथ किया जाता है। नारी मात्र को भगवती गायत्री की प्रतिमाएँ मानकर जब साधक के हृदय को पवित्रता का अभ्यास हो जाए, तो समझना चाहिए कि उसके लिए परमसिद्ध की अवस्था अब समीप है।

गायत्री माता का परिचय

गायत्री वह शक्ति केंद्र है, जिसके अंतर्गत विश्व के सभी दैहिक, दैविक, भौतिक, छोटे-बड़े शक्ति तत्त्वों का समावेश है। यह छोटे-बड़े शक्ति तत्त्व अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार संसार

के विभिन्न कार्यों का संपादन करते हैं, इन्हीं का नाम देवता है। ये ईश्वरीय सत्ता के अंतर्गत उस के अंश रूपी इकाइयाँ हैं, जो सृष्टि संचालन के विशाल कार्यक्रम में अपना कार्य भाग पूरा करते रहते हैं। जिस प्रकार एक शासन तंत्र के अंतर्गत अनेक अधिकारी अपनी-अपनी जिम्मेदारी निबाहते हुए सरकार का कार्य संचालन करते हैं। जिस प्रकार एक मशीन के अनेक पुर्जे अपने-अपने स्थान पर अपने-अपने क्रिया-कलापों को जारी रखते हुए उस मशीन की प्रक्रिया को सफल बनाते हैं, उसी प्रकार यह देव तत्त्व ईश्वरीय सृष्टि व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों की विधिव्यवस्था का संपादन करते हैं।

गायत्री एक सरकार एवं मशीन के सदृश है, जिसके अंग-प्रत्यगों के रूप में सभी देवता गुथे हुए हैं। 'गायत्री' के तीन अक्षर सत्, रज, तम तीन तत्त्वों के प्रतीक हैं। इन्हीं को स्थिति के अनुसार ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सरस्वती, लक्ष्मी, काली कहते हैं। इन्हीं तीनों श्रेणियों में विश्व की सभी स्थूल एवं सूक्ष्म शक्तियों की गणना होती है। जितनी भी शुभ-अशुभ, उपयोगी-अनुपयोगी, शांति-अशांति की प्रक्रियाएँ दृष्टिगोचर होती हैं, वे इन्हीं सत्, रज, तम तत्त्वों के अन्तर्गत हैं और यह तीन तत्त्व गायत्री के तीन चरण हैं। इस प्रकार समस्त शक्ति तत्त्वों का मूल आधार गायत्री ही ठहरती है।

ब्रह्म इस विशाल सृष्टि का मूल कारण तो अवश्य है, पर वह स्वभावतः साक्षी और द्रष्टा के रूप में स्थित रहता हुआ स्वयं में निष्क्रिय है। उसकी गतिशीलता ही वह तत्त्व है, जिसके द्वारा जगत के स्थूल और सूक्ष्म विभिन्न कार्यक्रम संपन्न होते हैं। इस गतिशीलता को ही प्रकृति, माया, चेतना, ब्रह्मपत्नी आदि नामों से पुकारा गया है। यही गायत्री है।

परमात्मा की कार्यकर्त्री देव शक्ति

सृष्टि का आरंभ करते हुए परमात्मा ने अपने भीतर से शक्ति तत्त्व प्रादुर्भूत किया और सृष्टि की सारी व्यवस्था उसे सौंप कर स्वयं निश्चिंत हो गया। इस प्रकार वह ब्रह्म निर्लिप्त, निरधिष्ठ,

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम।
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुति श्रद्धिवं ते वदामि॥

—ऋ० १०/१२५/४

निरवद्य एवं निरवयव बना रहा और संसार का सारा कार्य उस प्रादुर्भूत शक्ति तत्त्व के द्वारा संचालित होने लगता है। इस रहस्य का उद्घाटन निम्न प्रमाणों से होता है।

देवीह्येकाऽग्र आसीत्। सैव जगदण्डमसृजत् .....तस्या एव ब्रह्मा अजीजनत्। विष्णुरजीजनत् .....सर्वमजीजनत् .....। सैषा पराशक्तिः।

सृष्टि के आरंभ में वह एक ही देवी शक्ति थी। उसी ने वह ब्रह्मांड बनाया। उसी से ब्रह्मा उपजे। उसी ने विष्णु, रुद्र उत्पन्न किए। सब कुछ उसी से उत्पन्न हुआ। ऐसी है वह पराशक्ति।

निर्दोषो निरधिष्ठेयो निरवद्यः सनातनः।
सर्वकार्यकरी साहं विष्णोरव्ययरूपिणः॥

—लक्ष्मी तंत्र

वह ब्रह्म तो निर्दोष, निरधिष्ठ, निरवद्य, सनातन और अव्यय है। उनकी सर्वकारिणी तो मैं ही हूँ।

इस महाशक्ति की सर्वव्यापकता का, सभी पदार्थों की अधिष्ठात्री विभूति एवं सभी हलचल की मूल प्रेरणा होने का वर्णन अनेक ग्रंथों में मिलता है। देखिए-

त्वं भूमिः सर्वभूतानां प्राणः प्राणवतां तथा।
धीः श्रीः कांतिः क्षमा शांतिः श्रद्धा मेधा धृतिः स्मृतिः॥
त्वमुद्गीथेर्धं मात्राऽसि गायत्री व्याहृतिस्तथा।

—देवी० भा० १/५/५४-५५

तुम्हीं सब प्राणियों को धारण करने वाली भूमि हो। प्राणवानों में प्राण हो। तुम्हीं धी, श्री, कांति, शांति, श्रद्धा, मेधा, धृति, स्मृति हो। तुम्हीं ओंकार की अर्धमात्रा उद्गीथ हो, तुम ही गायत्री, व्याहृति हो।

पूषार्यमा मरुत्वांश्च ऋषयोऽपि मुनीश्वराः।
पितरोनागयक्षाश्च गन्धर्वाप्सरसो गणाः॥
ऋग्यजुः सामवेदाश्च अथर्वाङ्गिरसानिच।
त्वमेव पञ्चभूतानि तत्त्वानि जगदीश्वरि॥
ब्राह्मी सरस्वती सन्ध्या तुरीया त्वं महेश्वरि।

त्वमेव सर्वं शास्त्राणि त्वमेव सर्वं संहिता।
पुराणानि च तन्त्राणि महागममतानि च॥
तस्माद् ब्रह्म स्वरूपा त्वं किञ्चित्सदसदात्मिका।
परात्परेशी गायत्री नमस्ते मातरम्बिके॥

पूषा, अर्यमा, मरुत, ऋषि, मुनीश्वर, पितर, नाग, यक्ष, गंधर्व, अप्सरा, ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, अंगिरस्, पञ्चभूत, ब्राह्मी, सरस्वती एवं संध्या, महेश्वरी, सर्वशास्त्र, संहिता, पुराण, तंत्र, आगम, निगम तथा और भी जो कुछ संसार में है, सो हे ब्रह्मरूपिणी, पराशक्ति गायत्री तुम ही हो। हे माता तुम्हें प्रणाम है।

अदितिर्देवा गन्धर्वा मनुष्याः पितरोऽसुरास्तेषां सर्वभूतानां माता मेदिनी पृथिवी महती मही सावित्री गायत्री जगत्युर्वी पृथ्वी बहुला विश्वा भूता। *— महानारायणोपनिषद् १२/७*

अर्थात-देव, गंधर्व, मनुष्य, पितर , असुर इनका मूल कारण अदित अविनाशी तत्त्व है। वह अदिति सब भूतों की माता मेदिनी और माता मही है। उसी विशाल गायत्री के गर्भ में विश्व के संपूर्ण प्राणी निवास करते हैं।

परमात्मनस्तु या लोके ब्रह्मशक्तिर्विराजते।
सूक्ष्मा च सात्त्विकी चैव गायत्रीत्यभिधीयते॥

अर्थात—सब लोकों में विद्यमान जो सर्वव्यापक परमात्मा की शक्ति है, वह अत्यंत सूक्ष्म एवं सतोगुणी प्रकृति में निवास करती है। यह चेतन शक्ति गायत्री ही है।

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा॥

— ऋग्वेद १०/१२५/१

मैं ही रुद्र, वसु, आदित्य और विश्वेदेवाओं में विचरण करती हूँ। मैं ही मित्र, वरुण, इंद्र, अग्नि और अश्विनीकुमारों का रूप धारण करती हूँ।

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम।
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुति श्रद्धिवं ते वदामि॥

— ऋ० १०/१२५/४

यह विश्व मुझसे ही जीवित है। मेरे द्वारा ही उसे अन्न मिलता है। मेरी शक्ति से ही वह बोलता और सुनता है। जो मेरी उपेक्षा करता है, वह नष्ट हो जाता है। श्रद्धावानो सुनो, यह सब मैं तुम्हारे कल्याण के लिए कहती हूँ।

विभूतियों का भण्डागार

इस महाशक्ति का विस्तार अत्यंत व्यापक है। जब समस्त सृष्टि की अगणित क्रियाओं का संचालन उसी के द्वारा होता है, तो कितने प्रकार की शक्तियाँ उसके अंतर्गत काम करती होंगी, इसकी कल्पना कर सकना भी कठिन है; पर मनुष्य सीमित है, उसकी आवश्यकताएँ एवं शंकाएँ भी सीमित हैं, जिन वस्तुओं को प्राप्त करके उसका व्यक्तित्व निखर उठता है एवं मन उल्लसित हो जाता है, वे विभूतियाँ सीमित हैं। ये सीमित वस्तुएँ गायत्री का एक बहुत छोटा अंश मात्र हैं। मनुष्य में जो कुछ प्रशंसनीय एवं आकर्षक विशेषताएँ दिखाई पड़ती हैं, उन सबको उस महाशक्ति का छोटा-सा प्रसाद ही समझना चाहिए। मानव शरीर में वह शक्ति किन प्रमुख रूपों में अधिष्ठित है, इसका परिचय देते हुए माता स्वयं कहती है—

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्॥

—ऋ० १०/१२५/५

मैं तत्त्वज्ञान का उपदेश करती हूँ, मैं जिसे चाहती हूँ, उसे समुन्नत करती हूँ, उसे सद्बुद्धि देती हूँ और ब्रह्मपद प्रदान करती हूँ।

रहस्यों को जानना आवश्यक है

गायत्री तत्त्व के सूक्ष्म रहस्यों को जानने के उपरांत ही उसकी उपासना वास्तविक रूप में होना संभव है। उसके मर्म-विज्ञान को समझे बिना साधारण रीति सो जो उपासना क्रम चलाया जाता है, उसका परिणाम तो होता है, पर उसकी मात्रा स्वल्प ही होती है। उपासना का समुचित सत्परिणाम प्राप्त करने के लिए इस विज्ञान के रहस्यों को समझना और उनका अनुशीलन करना आवश्यक है। मनुष्य की आत्मा पर चढ़े मल, विक्षेप आवरणों को हटाने के लिए

जैसी तीव्र साधना एवं महान निष्ठा की आवश्यकता है, उसको उपलब्ध करने के लिए गायत्री के तत्त्वज्ञान को समझना चाहिए।

शतपथ ब्रह्माण में एक आख्यायिका आती है, जिसमें यह बताने का प्रयत्न किया गया है कि एक पुरोहित गायत्री के मर्म से वंचित रहने के कारण साधारण उपासना करते रहने पर भी समुचित परिणाम प्राप्त न कर सका। आख्यायिका इस प्रकार है-

एतद्ध वै तज्जनको वैदेहो बुडिलमाश्वतराश्विमुवाच यन्नु हो तद्गायत्रीविदब्रूथा अथकथा ँहस्ती भूतो वहसीति मुखँह्यस्या सम्राण्न विदां चक रेति होवाच। तस्या अग्निरेव मुखं यदि ह वाऽपि बह्विवाग्नावभ्यादधति सर्वमेव तत्संदहत्येवँहैवंविद्यद्यपि बह्विव पापं करोति सर्वमेव तत्संप्साय शुद्धः पूतोऽजरोऽमृतः संभवति।

—शतपथ १४.८.१५.११-१२

अर्थात—'राजा जनक का पूर्व जन्म का पुरोहित बुडिल अनुचित दान लेने के पाप से मरकर हाथी बन गया; किन्तु राजा जनक ने महान तप किया और उसके फल से वह पुनः राजा हुआ। राजा ने हाथी को उसके पूर्व जन्म का स्मरण दिलाते हुआ कहा—'आप तो पूर्व जन्म में कहा करते थे कि मैं गायत्री का ज्ञाता हूँ, फिर अब हाथी बन कर क्यों बोझ ढोते हो?' हाथी ने कहा—'मैं पूर्व जन्म में गायत्री का मुख नहीं समझ पाया था, इसलिए मेरे पाप नष्ट न हो सके।'

"गायत्री का मुख अग्नि ही है। जैसे जो ईंधन डाले जाते हैं, उन्हें अग्नि भस्म कर देती है, वैसे ही गायत्री का मुख जानने वाला अग्निमुख होकर पूर्वकृत पापों को भस्म करके उनसे छुटकारा प्राप्त कर अजर-अमर हो जाता है।"

गायत्री के जिस मुख का ऊपर की पंक्तियों में वर्णन है, वह उसका प्रवेश द्वार-आरम्भिक ज्ञान ही है। जिस प्रकार भोजन को पेट में पहुँचाने के लिए मुख ही उसका द्वार होता है, उसी प्रकार उपासना का मुख यह है कि उपास्य के बारे में आवश्यक ज्ञान प्राप्त किया जाए। यह ज्ञान ग्रंथों के स्वाध्याय द्वारा एवं विद्या के विशेषज्ञों

के सत्संग से जाना जा सकता है। यह दोनों ही माध्यम प्रत्येक जिज्ञासु को अनिवार्यत: अपनाने चाहिए।

गायत्री के ज्ञान-विज्ञान की महत्ता बताते हुए उपनिषद्कार ने बताया है कि ज्ञानपूर्वक की हुई उपासना से आत्मा में सन्निहित दिव्य तत्त्वों का विकास होता है और इस जीवन तथा संसार में जो कुछ प्राप्त होने योग्य है, वह सभी कुछ प्राप्त हो जाता है।

यो ह वा एवं वित् स ब्रह्मवित्पुण्यां च कीर्तिं लभते सुरभींश्च गन्धान। सोऽपहतपाप्मानन्तां श्रियमश्नुते य एवं वेद यश्चैवं विद्वानेवमेतां वेदानां मातरं सावित्रीसम्पदमुपनिषदमुपास्त इति ब्राह्मणम्॥

-गोपथ ब्राह्मण क०३८

अर्थात जो इस प्रकार वेदमाता गायत्री को जान लेता है, वह ब्रह्मविद्, पुण्य, कीर्ति एवं दिव्य गंधों को प्राप्त करता है और निष्पाप होकर श्रेय का अधिकारी बनता है।

तीन चरणों की अनंत सामर्थ्य

गायत्री को त्रिपदा कहा गया है, उसके तीन चरण हैं। इनमें से प्रत्येक चरण तीन लोकांतरों तक फैला हुआ है। उसके माध्यम से आत्मा की गति केवल इस लोक तक सीमित नहीं, वरन वह अन्य लोकों तक अपना क्षेत्र विस्तृत कर सकता है और वहाँ उपलब्ध साधनों से लाभान्वित हो सकता है।

भूमिरन्तरिक्षं द्यौरित्यष्टावक्षराण्यष्टाक्षर ह वा एकं गायत्र्यै पदमेतदु हैवास्या एतत् स यावदेषु त्रिषु लोकेषु तावद्ध जयति योऽस्या एतदेवं पदं वेद। *-बृहदारण्यक ५/१४/१*

भूमि, अन्तरिक्ष, द्यौ ये तीनों गायत्री के प्रथम पाद के आठ अक्षरों के बराबर हैं। जो गायत्री के इस पद को जान लेता है, सो तीनों लोकों को जीत लेता है।

जिस प्रकार बाह्य जगत् में अनेक लोक हैं, उसी प्रकार इस शरीर के भीतर भी सप्त प्राण, षट्चक्र, ग्रंथियाँ, उपत्यिकाएँ मौजद हैं। साधारण मनुष्यों में ये प्रसुप्त अवस्था में अज्ञात पड़ी रहती हैं, पर

जब गायत्री उपासना द्वारा जाग्रत आत्मा इन अविज्ञात शक्ति केंद्रों को झकझोरता है, तो वे भी जाग्रत हो जाते हैं और उनके भीतर जो आवश्यक तत्त्व भरे पड़े हैं, वे स्पष्ट हो जाते हैं। जिस प्रकार वैज्ञानिक लोग ब्रह्मांड में बाह्य जगत में व्याप्त अनेक शक्तियों को ढूँढ़ते और उनका उपयोग करते हैं, उसी प्रकार आत्म-विज्ञानी साधक पिण्ड में, देह में, अंतर्जगत में, सन्निहित तत्त्वों का साक्षात्कार करके उनकी दिव्य-शक्तियों से लाभान्वित होते हैं। आत्म-दर्शन, ब्रह्म साक्षात्कार एवं स्वर्गलोक की प्राप्ति उनके लिए सरल हो जाती है। इस मार्ग में सफलता प्राप्त करने वाले, अपनी परंपरा को आगे जारी रखने वाले किसी तेजस्वी उत्तराधिकारी को भी पीछे छोड़ जाते हैं।

ते वा एते पञ्च ब्रह्मपुरुषाः स्वर्गस्य लोकस्य द्वारपाः स य एतानेवं पञ्च ब्रह्मपुरुषान् स्वर्गस्य लोकस्य द्वारपान्वेदास्य कुले वीरो जायते प्रतिपद्यते स्वर्गं लोकम्। *-छांदोग्य ३/१३/६*

हृदय चैतन्य ज्योति गायत्री रूप ब्रह्म के प्राप्ति स्थान के प्राण, व्यान, अपान, समान, उदान ये पाँच द्वारपाल हैं। इनको वश में करे। जिससे हृदय स्थित गायत्री स्वरूप ब्रह्म की प्राप्ति हो। इस प्रकार उपासना करने वाला स्वर्गलोक को प्राप्त होता है और उसके कुल में वीर पुत्र या शिष्य उत्पन्न होता है।

मंगलमयी मधु विद्या

बृहदारण्यक उपनिषद् में जिस मधु विद्या का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है, उसका सम्बन्ध गायत्री से ही है। जिस प्रकार पारस मणि के स्पर्श से लोहे के टुकड़ों का ढेर भी सोना हो जाता है। उसी प्रकार इस संसार की अनेक कड़ुवी, कुरूप, कष्टदायक, प्रतिकूल वस्तुएँ तथा परिस्थितियाँ भी उसके लिए मधुर, सौंदर्ययुक्त, सुखदायक एवं अनुकूल बन जाती हैं।

गायत्री के तीनों चरण समस्त सृष्टि को अपने लिए आनंदपूर्वक मधुमय बना देने की शक्ति से परिपूर्ण हैं। नदियों को जलपूर्ण, समुद्र को रत्नपूर्ण और ओषधियों को जीवनी शक्ति से परिपूर्ण

गायत्री का प्रथम चरण बनाता है। रात्रि और दिन किसी प्रकृति विपरीतता से—तूफान, भूचाल, अतिवृष्टि, शीतोष्ण की अधिकता जैसी विकृतियों से बच कर हितकर वातावरण से आनंदमय रहें; पृथ्वी के परमाणु पर्याप्त मात्रा में अन्न, धातु, खनिज, रस, रत्न आदि प्रदान करते रहें तथा द्युलोक की मंगलमयी किरणें पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध रहें, ऐसी शक्ति गायत्री के दूसरे चरण में है। गायत्री का तीसरा चरण सूर्य की उत्पादक, प्रेरक एवं विकासोन्मुख शक्यिों को नियंत्रित एवं आवश्यक मात्रा में पृथ्वी पर आह्वान करता है। न तो सूर्य की शक्ति शाली किरणें पृथ्वी पर इतनी अधिक आएँ कि ताप से जीवन रस जले और न उसकी इतनी न्यूनता हो कि विकास क्रम में बाधा पड़े। चूँकि वनस्पतियाँ, जंतु एवं जड़-चेतन सभी अपना जीवन-तत्त्व सूर्य से प्राप्त करते हैं, मानव की चेतना एवं विशेष प्राण क्षमता भी सूर्य पर ही अवलंबित है। इस विश्व प्रसविता सविता पर गायत्री का तीसरा चरण नियंत्रण स्थापित करता है, इसलिए सृष्टि के समस्त संतुलन को गायत्री शक्ति के आधार पर स्थित रख सकना संभव हो सकता है।

गायत्री में अध्यात्म तत्त्व तो प्रधान रूप से है ही, वह आत्मबल और अंतर्जगत की अगणित सूक्षम शक्तियों को विकसित करके मनुष्य को इस पृथ्वी तल का देवता तो बना ही सकता है, साथ ही स्थूल सृष्टि में काम करने वाली सभी भौतिक शक्तियों पर उसका नियंत्रण है। इस विकास को प्राचीनकाल में जब आत्मदर्शी लोग जानते थे, तब इस संसार को ही नहीं अन्य लोकों की स्थिति भी शांतिमय, मधुरिमा से पूर्ण बनाए रख सकने में समर्थ थे। भारत वर्ष का यही महान विज्ञान किसी समय उसे अत्यधिक ऊँची सम्मानास्पद स्थिति में रखे हुए था। आज इसी को खोकर हम मणिहीन सर्प की तरह दीन-हीन एवं परमुखापेक्षी बने हुए हैं। गायत्री में सन्निहित मधु विद्या का उपनिषदों में वर्णन इस प्रकार है—

तत्सवितुर्वरेण्यम् मधुवाताऋतायते मधुक्षरन्ति सिन्धवः माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः भूः स्वाहा भर्गो देवस्य धीमहि मधुनक्त

मुतोषसो मधुमत्पार्थिवꣳरजः मधुद्यौरस्तु नः पिता भुवः स्वाहा धियो यो नः प्रचोदयात् मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ३अस्तु सूर्यः माध्वीर्गावो भवन्तु नः। स्वः स्वाहेति सर्वा च सावित्री सर्वाश्च मधुमतीरहमेवेद ꣳ सर्वं भूयासं भूर्भुवः स्वः स्वाहा।

-बृहदारण्यक ६/३/६

-(तत्सवितुर्वरेण्यं) मधुर वायु चले, नदी और समुद्र रसमय होकर रहें। ओषधियाँ हमारे लिए सुखदायक हों।

-(भर्गो देवस्य धीमहि) रात्रि और दिन हमारे लिए सुखकारी हों, पृथ्वी की रज हमारे लिए मंगलमय हो। द्युलोक हमें सुख प्रदान करे।

-(धियो यो नः प्रचोदयात्) वनस्पति हमारे लिए रसमयी हों। सूर्य हमारे लिए सुखप्रद हो। उसकी रश्मियाँ हमारे लिए कल्याणकारी हों। सभी हमारे लिए सुखप्रद हों। मैं सबके लिए मधुर बन जाऊँ।

अंतर्जगत के गुप्त तत्त्व

मनुष्य के अंतर्जगत में जो विलक्षण शक्तियाँ भरी हुई हैं, उनका जागरण भी गायत्री महामंत्र द्वारा ही संभव है। इस महामंत्र का एक-एक अक्षर शक्ति बीज है। इन शक्ति बीजों के स्पर्श से शरीर में अवस्थित प्रधान षट्चक्रों एवं अठारह उपचक्रों का इस प्रकार कुल २४ चक्रों का जागरण गायत्री उपासना से होता है। इन रत्न भण्डार सरीखे चक्र-उपचक्रों में से प्रत्येक में वे शक्तियाँ और सिद्धियाँ भरी हुई हैं, जिन्हें प्राचीन काल में ऋषि-मुनि प्राप्त करके अपने को ईश्वरीय तत्त्वों का अधिकारी, उत्तराधिकारी बनाए हुए थे। इसका प्रमाण इस प्रकार मिलता है-

चतुर्विंशांक्षरी विद्या परतत्त्वविनिर्मिता।
तत्कारात् यात्कार पर्यन्तं शब्द ब्रह्मस्वरूपिणी॥

—गायत्री तन्त्र

अर्थात-'तत्' शब्द से लेकर 'प्रचोदयात्' शब्द पर्यंत २४ अक्षरों वाली गायत्री परतत्त्व अर्थात पराविद्या से ओत-प्रोत है।

परमात्मा तथा उसकी इस विधान शक्ति को लिंग भेद में विभाजित नहीं किया जा सकता। वह न नर है, न नारी, परंतु इतना

अवश्य है कि उसे जिस रूप में जिस भाव से माना जाए, उसी के अनुरूप वह सामने उपस्थित होती है। भक्त की भावना के ढाँचे में वह महाशक्ति भी मिट्टी की तरह आसानी से ढल जाती है और तदनुसार अपने अस्तित्व का परिचय देती है। भगवान को भक्त अपनी अभिरुचि के अनुसार माता-पिता, बंधु, सखा, पति, पुत्र आदि जो चाहे, सो मान सकता है और उसी के अनुसार उसको प्रत्युत्तर देते अनुभव कर सकता है।

इस संसार में माता का स्नेह एवं वात्सल्य सबसे उत्कृष्ट होता है, इसलिए अन्य संबंध स्थापित करने की अपेक्षा उस ईश्वरीय सत्ता को माता के भाव से मानना, मातृ संबंध स्थापित करना अधिक उत्तम है। इस मान्यता के कारण वह शक्ति भी माता के अनुरूप स्नेह एवं वात्सल्य के साथ हमारे सामने आ उपस्थित होती है। भगवान को माता के रूप में प्राप्त करना भक्त के लिए सबसे अधिक आनंददायक सौभाग्य हो सकता है। इसलिए गायत्री को माता के रूप में माना गया है और उसी रूप में उसकी पूजा होती है।

गायत्री माता को नारी रूप में देखने की प्रतिक्रिया होती है, नारी मात्र को गायत्री माता का स्वरूप समझना। स्त्री जाति में मातृ भावना की स्थापना होकर साधक जब गायत्री की छवि को एक नारी के रूप में सामने रख कर उसके चरणों पर अपना शुद्ध मातृ भाव समर्पित करता है, तो यही अभ्यास धीरे-धीरे दृढ़ होता हुआ इस स्थिति को जा पहुँचता है कि कोई स्त्री चाहे वह रूपवती या तरुणी ही क्यों न हो, गायत्री माता की प्रतीक ही दिखाई पड़ने लगती है। यह मातृ-बुद्धि प्राप्त होना एक बहुत बड़ी आध्यात्मिक सफलता है।

नारी के प्रति पूज्य भावना

गायत्री उपासना से नारी मात्र के प्रति पवित्र भाव बढ़ते हैं और उसके प्रति श्रेष्ठ व्यवहार करने की इच्छा स्वभावतः होती है। ऐसी भावना वाले व्यक्ति नारी सम्मान के, नारी पूजा के प्रबल समर्थक

होते हैं। यह समर्थन समाज में सुख-शांति एवं प्रगति के लिए नितांत आवश्यक है। शास्त्रों में भी इसका समर्थन है-

जगदम्बामयं मान्यं स्त्रीमात्रमविशेषतः।

नारी मात्र को जगदंबा स्वरूप माने।

स्त्रीणां निन्दां प्रहारञ्च कौटिल्यं चाप्रियं वचः।
आत्मना हितमन्विच्छन्देवीभक्तो विवर्जयेत्॥

अपना कल्याण चाहने वाला माता का उपासक स्त्रियों की निंदा न करे, न उन्हें मारे, न उनसे छल करे, न उनका जी दुःखाए।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्र नार्यो न पूज्यन्ते श्मशानं तत्र वै गृहम्॥

जहाँ नारी की पूजा है, वहाँ देवता निवास करते हैं। जहाँ नारी का तिरस्कार होता है, वह घर निश्चय ही श्मशान है।

गायत्री उपासना में नारी जाति के प्रति गायत्री माता की ही भावना रहती है, उन्हें वह परम पूज्य दृष्टि से देखता है, ऐसी स्थिति में वासनात्मक कुविचार तो उसके पास तक फटकते ही नहीं—

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत् का ते स्तुतिः स्तव्यपरा परोक्तिः॥

—दुर्गासप्तशती ११/६

इस संसार में सम्पूर्ण परा-अपरा विद्याएं आपका ही भेद हैं। मेरे संसार की समस्त नारियाँ आपका ही रूप हैं। हे माँ! तुम्हारे द्वारा ही यह सारा संसार आपूरित है, किन शब्दों में आपकी स्तुति की जा सकती है।

पिता से माता अधिक उदार

भक्त की कोमल भावना तो यहाँ तक मानती है कि न्यायकारी पिता यदि हमारे किन्हीं अपराधों से कुपित होकर दंड व्यवस्था करेंगे, तो माता अपनी करुणा से द्रवित होकर उस दंड से बचा लेगी। बचा ही नहीं लेगी, वरन परमपिता को धमकी भी देगी कि मेरे भक्त को दुःख क्यों देते हैं? संसार में पूर्ण निर्दोष कौन है, जब सभी दोषी हैं, तो मेरे भक्तों के प्रति वैसा उदार व्यवहार क्यों न

करोगे ? भक्त मानता है कि जब माता इस प्रकार अपना पक्ष लेगी, तो फिर उनकी सिफारिश पर पिता को झुकना पड़ेगा। इन भावनाओं की सुंदर अभिव्यक्ति देखिए-

पितेवत्वत्प्रेयाञ्जननि परिपूर्णागसिजने,
हितस्तोती वृत्या भवति च कदाचित्कलुषधीः।
किमेतन्निर्दोषो वा इहजगतीति त्वमुचितै,
रुपायैर्विस्मार्य स्वजनयसि माता तदसि नः।

— पाराशर भट्ट

परमपिता परमात्मा जब अपराधी जीव पर पिता के समान कुपित हो जाते हैं, तब आप ही उन्हें समझाती हो कि "यह क्या करते हो ? इस संसार में पूर्ण निर्दोष कौन है" ? उनका क्रोध शांत कर आप ही उनमें दया उपजाती हैं। इसलिए आप ही हमारी दयामयी माता हैं।

परम पिता से महिमामयी माता अधिक उदार, अधिक करुणापूर्ण, अधिक वात्सल्य युक्त है, इसका एक उदाहरण—कवि ने रामचंद्र और जानकी की तुलना का बहुत ही सुंदर चित्रण किया है-

मातर्मैथिलि राक्षसीस्त्वयि तदेवार्द्रापाधास्त्वया,
रक्षन्त्या पवनात्मजाल्लधुतरा रामस्य गोष्ठी कृता।
काकं ते च विभीषणं शरणमित्युक्ति क्षमौ रक्षतः,
सा नस्सान्द्र महागससुखयतु क्षान्तिस्तवाकस्मिकी॥

रामचंद्र जी ने शरण आने पर ही काक और विभीषण की रक्षा की, इसमें इनका क्या गौरव है। जानकी जी की महानता देखो, उन्होंने अपराध करने वाली राक्षसियों को बिना कोई प्रार्थना किए ही दंड देने को उद्यत हनुमान जी से छुड़ा दिया। जानकी की करुणा रामचंद्र जी की अपेक्षा कहीं बड़ी है।

यह तो हुई भक्ति की भावना और छवि की अनुभूति। पर तत्त्वतः भी गायत्री उपासना माता की गोद का सेवन करने और उसका पयपान करने के समान सब प्रकार मंगलमय ही है।

मुद्रक—युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा